श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

भ्रमरगीत (10.46)

तरुण गोपियों का दुःख हरने लेकर प्रभु संदेश,
ब्रज में पहुंचे ज्ञानी उद्धव हरने सबका क्लेश

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंधः

॥ अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

श्रीशुक उवाच

वृष्णीनां(म्) प्रवरो मन्त्री, कृष्णस्य दयितः(स्) सखा ।
शिष्यो बृहस्पतेः(स्) साक्षा- दुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ 1॥

साक्षा+ दुद्+धवो

श्रीशुकदेवजी कहते है- परीक्षित! उद्धव जी वृष्णिवंशियों में एक प्रधान पुरुष थे। वे साक्षात् बृहस्पति जी के शिष्य और परम बुद्धिमान थे। उनकी महिमा के सम्बन्ध में इससे बढ़कर और कौन-सी बात कही जा सकती है कि वे भगवान श्रीकृष्ण के प्यारे सखा तथा मन्त्री भी थे।

तमाह भगवान् प्रेष्ठं(म्), भक्तमेकान्तिनं(ङ्) क्वचित् ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं(म्), प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ 2॥

भक्तमेका+न्तिनं(ङ्), प्रपन् + नार् + तिहरो

एक दिन शरणागतों के सारे दुःख हर लेने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय भक्त और एकान्त प्रेमी उद्धवजी का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा।

*गच्छोद्धव व्रजं(म्) सौम्य, पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ।

गोपीनां(म्) मद्वियोगाधिं(म्), मत्सन्देशैर्विमोचय ॥ 3॥

गच्छोद् + धव , मत्सन् + देशैर् + विमोचय

'सौम्यस्वभाव उद्धव! तुम व्रज में जाओ। वहाँ मेरे पिता-माता नन्दबाबा और यशोदा मैया है, उन्हें आनन्दित करो; और गोपियाँ मेरे विरह की व्याधि से बहुत ही दुःखी हो। रही हैं, उन्हें मेरे सन्देश सुनाकर उस वेदना से मुक्त करो।

ता मन्मनस्का मत्प्राणा, मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ।

मामेव दयितं(म्) प्रेष्ठ- मात्मानं(म्) मनसा गताः ।

ये त्यक्तलोकधर्माश्च, मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥ 4॥

त्यक्तलो+कधर्+माश्च , बिभर् + म्यहम्

प्यारे उद्धव! गोपियों का मन नित्य-निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है। उनके प्राण, उनका जीवन, उनका सर्वस्व में ही हूँ। मेरे लिये उन्होंने अपने पति पुत्र आदि सभी सगे-सम्बन्धियों को छोड़ दिया है। उन्होंने बुद्धि से भी मुझी को अपना प्यारा, अपना प्रियतम-नहीं, नहीं; अपना आत्मा मान रखा है। मेरा यह व्रत है कि जो लोग मेरे लिये लौकिक और पारलौकिक धर्मों को छोड़ देते हैं, उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ।

मयि ताः(फ्) प्रेयसां(म्) प्रेष्ठे, दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ।

स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति, विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः ॥ 5॥

स्मरन् + त्योऽ +ङ्ग , विमुह् + यन्ति, विरहौ + त्कण्ठय + विह्वला

प्रिय उद्धव ! मैं उन गोपियों का परम प्रियतम हूँ। मेरे यहाँ चले आने से वे मुझे दूरस्थ मानती हैं और मेरा स्मरण करके अत्यन्त मोहित हो रही हैं, बार-बार मूर्च्छित हो जाती है। वे मेरे विरह की व्यथा से विहल हो रही हैं, प्रतिक्षण मेरे लिये उत्कण्ठित रहती हैं।

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण, प्रायः(फ्) प्राणान् कथञ्चन ।

प्रत्यागमनसन्देशैर्- बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ 6॥

धारयन् + त्यति + कृच्छ्रेण, प्रत्या+गमन+सन् +देशैर्

मेरी गोपियाँ, मेरी प्रेयसियाँ इस समय बड़े ही कष्ट और यत्न से अपने प्राणों को किसी प्रकार रख रही हैं। मैंने उनसे कहा था कि 'मैं आऊँगा।' वही उनके जीवन का आधार है। उद्धव ! और तो क्या कहूँ,

मैं ही उनकी आत्मा हूँ। वे नित्य-निरन्तर मुझमें ही तन्मय रहती है।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त उद्धवो राजन्, सन्देशं(म्) भर्तुरादृतः ।

आदाय रथमारुह्य, प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ 7॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं-परीक्षित् । जब भगवान श्रीकृष्ण ने यह बात कही, तब उद्धवजी बड़े आदर से अपने स्वामी का सन्देश लेकर रथ पर सवार हुए और नन्दगाँव के लिये चल पड़े।

प्राप्तो नन्दव्रजं(म्) श्रीमान्, निम्लोचति विभावसौ ।

छन्नयानः(फ्) प्रविशतां(म्), पशूनां(ङ्) खुररेणुभिः ॥ 8॥

छन् + नयान्:(फ्), निम्लो+चति, खुररे+णुभिः

परम सुन्दर उद्धवजी सूर्यास्त के समय नन्दबाबा के व्रज में पहुँचे। उस समय जंगल से गौएँ लौट रही थीं। उनके खुरों के आघात से इतनी धूल उड़ रही थी कि उनका रथ ढक गया था।

वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्- नादितं(म्) शुष्मिभिर्वृषैः ।

धावन्तीभिश्च वास्राभि- रूधोभारैः(स्) स्ववत्सकान् ॥ 9॥

वासितार्थेऽ + भियुध्यद्+ भिर् , स्ववत्+सकान्

ब्रजभूमि में ऋतुमती गौओं के लिये मतवाले साँड़ आपस में लड़ रहे थे। उनकी गर्जना से सारा व्रज गूंज रहा था। थोड़े दिनों की ब्यायी हुई गौएँ अपने थनों के भारी भार से दबी होने पर भी अपने-अपने बछड़ों की ओर दौड़ रही थीं।

इतस्ततो विल(ङ्)घद्भिर्- गोवत्सैर्मण्डितं(म्) सितैः ।

गोदोहशब्दाभिरवं(वँ), वेणूनां(न्) निः(स्)स्वनेन च ॥ 10॥

गोवत्सैर् + मण्डितं(म्), गोदो + हशब्दा + भिरवं(वँ)

सफेद रंग के बछड़े इधर-उधर उछल-कूद मचाते हुए बहुत ही भले मालूम होते थे। गाय दुहने की 'घर-घर' ध्वनि से और बाँसुरियों की मधुर टेर से अब भी व्रज की अपूर्व शोभा हो रही थी।

गायन्तीभिश्च कर्माणि, शुभानि बलकृष्णयोः ।

स्वलं(ङ्)कृताभिर्गोपीभिर्-गोपैश्च सुविराजितम् ॥ 11॥

गायन्ती+भिश्च, स्वलं(ङ्)कृता + भिर्गोपी + भिर्

गोपी और गोप सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा गहनों से सज-धजकर श्रीकृष्ण तथा बलरामजी के मंगलमय चरित्रों का गान करे रहे थे और इस प्रकार व्रज की शोभा और भी बढ़ गयी थी।

अग्न्यर्कातिथिगोविप्र- पितृदेवार्चनान्वितैः ।

धूपदीपैश्च माल्यैश्च, गोपावासैर्मनोरमम् ॥ 12॥

अग्न्यर्का + तिथिगो+ विप्र, पितृदेवार् + चनान्वितैः,गोपावासैर् + मनोरमम्

गोपों के घरों में अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण और देवता- पितरों की पूजा की हुई थी। धूप की सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी और दीपक जगमगा रहे थे। उन घरों को पुष्पों से सजाया गया था। ऐसे मनोहर गृहों से सारा व्रज और भी मनोरम हो रहा था।

सर्वतः(फ्) पुष्पितवनं(न्), द्विजालिकुलनादितम् ।

हं(म्)सकारण्डवाकीर्णैः(फ्), पद्मषण्डैश्च मण्डितम् ॥ 13॥

द्विजा + लिकुलना + दितम्, हं(म्)सका+ रण्डवा+ कीर्णैः(फ्)

चारों ओर वन-पंक्तियाँ फूलों से लद रही थीं। पक्षी चहक रहे थे और भौरें गुंजार कर रहे थे। वहाँ जल और स्थल दोनों ही कमलों के वन से शोभायमान थे और हंस, बत्तख आदि पक्षी वन में विहार कर रहे थे।

तमागतं(म्) समागम्य, कृष्णस्यानुचरं(म्) प्रियम् ।

नन्दः(फ्) प्रीतः(फ्) परिष्वज्य, वासुदेवधियार्चयत् ॥ 14॥

कृष्णस्या + नुचरं(म्), परिष् + वज्य, वासुदे+वधियार् + चयत्

जब भगवान श्रीकृष्ण के प्यारे अनुचर उद्धवजी व्रज में आये, तब उनसे मिल कर नन्दबाबा बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने उद्धवजी को गले लगाकर उनका वैसे ही सम्मान किया, मानो स्वयं भगवान श्रीकृष्ण आ गये हों।

भोजितं(म्) परमान्नेन, सं(वँ)विष्टं(ङ्) कशिपौ सुखम् ।

गतश्रमं(म्) पर्यपृच्छत्, पादसं(वँ)वाहनादिभिः ॥ 15॥

पादसं(वँ)वा + हनादिभिः

समय पर उत्तम अन्न का भोजन कराया और जब वे आराम से पलंग पर बैठ गये, सेवकों ने पाँव दबाकर, पंखा झलकर उनकी थकावट दूर कर दी।

कच्चिदङ्ग महाभाग, सखा नः(श्) शूरनन्दनः ।

आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्- युक्तो मुक्तः(स्) सुहृद्वृतः ॥ 16॥

कुशल्य + पत्याद्यैर्

तब नन्द बाबा ने उनसे पूछा-'परम भाग्यवान् उद्धवजी! अब हमारे सखा वसुदेवजी जेल से छूट गये। उनके आत्मीय स्वजन तथा पुत्र आदि उनके साथ हैं। इस समय वे सब कुशल से तो हैं न?

दिष्ट्या कं(म्)सो हतः(फ्) पापः(स्), सानुगः(स्) स्वेन पाप्मना ।

साधूनां(न्) धर्मशीलानां(यँ), यदूनां(न्) द्वेष्टि यः(स्) सदा ॥ 17॥

यह बड़े सौभाग्य की बात है कि अपने पापों के फलस्वरूप पापी कंस अपने अनुयायियों के साथ मारा गया। क्योंकि स्वभाव से ही धार्मिक परम साधु यदुवंशियों से वह सदा द्वेष करता था।

अपि स्मरति नः(ख्) कृष्णो, मातरं(म्) सुहृदः(स्) सखीन् ।

गोपान् व्रजं(ञ्) चात्मनाथं(ङ्), गावो वृन्दावनं(ङ्) गिरिम् ॥ 18॥

अच्छा उद्धवजी ! श्रीकृष्ण कभी हमलोगों की भी याद करते हैं? यह उनकी माँ है, स्वजन सम्बन्धी हैं, सखा हैं, गोप हैं; उन्हीं को अपना स्वामी और सर्वस्व माननेवाला यह व्रज है; उन्हों की गौएँ, वृन्दावन और यह गिरिराज है, क्या वे कभी इनका स्मरण करते हैं?

अप्यायास्यति गोविन्दः(स्), स्वजनान् सकृदीक्षितुम् ।

तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं(म्), सुनसं(म्) सुस्मितेक्षणम् ॥ 19॥

अप्या+यास्यति, सकृदी+क्षितुम्, तद् + वक्त्रं(म्)

आप यह तो बतलाइये कि हमारे गोविन्द अपने सुहृद्-बान्धवों को देखने के लिये एक बार भी यहाँ आयेंगे क्या? यदि वे यहाँ आ जाते तो हम उनकी वह सुघड़ नासिका,उनका मधुर हास्य और मनोहर चितवन से युक्त मुख कमल देख तो लेते।

दावाग्नेर्वातवर्षाच्च, वृषसर्पाच्च रक्षिताः ।

दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः(ख्), कृष्णेन सुमहात्मना ॥ 20॥

दावाग्नेर्वा + तवर्षाच्च , दुरत्य+येभ्यो, सुमहा+त्मना

उद्धवजी ! श्रीकृष्ण का हृदय उदार है, उनकी शक्ति अनन्त है, उन्होंने दावानल से, आंधी-पानी से, वृषासुर और अजगर आदि अनेकों मृत्यु के निमित्तों स जिन्हें टालने का कोई उपाय न था- एक बार नहीं, अनेक बार हमारी रक्षा की है।

स्मरतां(ङ्) कृष्णवीर्याणि, लीलापाङ्गनिरीक्षितम् ।

हसितं(म्) भाषितं(ञ्) चाङ्ग, सर्वा नः(श्) शिथिलाः(ख्) क्रियाः ॥ 21॥

लीला+ पाङ्गनिरी + क्षितम्

उद्धवजी ! हम श्रीकृष्णके विचित्र चरित्र, उनकी विलासपूर्ण तिरछी चितवन, उन्मुक्त हास्य, मधुर भाषण आदिका स्मरण करते रहते हैं और उसमें इतने तन्मय रहते हैं कि अब हमसे कोई काम-काज नहीं हो पाता।

सरिच्छैलवनोद्देशान्, मुकुन्दपदभूषितान् ।

आक्रीडानीक्षमाणानां(म्), मनो याति तदात्मताम् ॥ 22॥

सरिच्छै+ लवनोद् + देशान् , मुकुन्द+ पदभू+ षितान् ,आक्रीडानी+क्षमाणानां(म्)

जब हम देखते हैं कि यह वही नदी है, जिसमें श्रीकृष्ण जलक्रीडा करते थे; यह वही गिरिराज है, जिसे उन्होंने अपने एक हाथ पर उठा लिया था, ये वे ही वन के प्रदेश है, जहाँ श्रीकृष्ण गौएँ चराते हुए बांसुरी बजाते थे, और ये वे ही स्थान हैं, जहाँ वे अपने सखाओं के साथ अनेकों प्रकार के खेल खेलते थे; और साथ ही यह भी देखते हैं कि वहाँ उनके चरणचिह्न अभी मिटे नहीं हैं, तब उन्हें देखकर हमारा मन श्रीकृष्णमय हो जाता है।

मन्ये कृष्णं(ञ्) च रामं(ञ्) च, प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ।

सुराणां(म्) महदर्थाय, गर्गस्य वचनं(यँ) यथा ॥ 23॥

प्राप्ता+विह, महदर्+थाय

इसमें सन्देह नहीं कि मैं श्रीकृष्ण और बलराम को देवशिरोमणि मानता हूँ और यह भी मानता हूँ कि वे देवताओं का कोई बहुत बड़ा प्रयोजन सिद्ध करने के लिये यहाँ आये हुए हैं। स्वयं भगवान गर्गाचार्यजी ने मुझसे ऐसा ही कहा था।

कं(म्)सं(न्) नागायुतप्राणं(म्),मल्लौ गजपतिं(न्) तथा ।

अवधिष्टां(लँ) लीलयैव, पशूनिव मृगाधिपः ॥ 24॥

नागा + युतप्राणं(म्)

जैसे सिंह बिना किसी परिश्रम के पशुओं को मार डालता है, वैसे ही उन्होंने खेल खेल में ही दस हजार हाथियों का बल रखनेवाले कंस, उसके दोनों अजेय पहलवानों और महान बलशाली गजराज कुवलयापीड को मार डाला।

तालत्रयं(म्) महासारं(न्), धनुर्यष्टिमिवेभराट् ।

बभञ्जैकेन हस्तेन, सप्ताहमदधाद् गिरिम् ॥ 25॥

धनुर् + यष्टिमिवे + भराट् , सप्ता + हमदधाद्

उन्होंने तीन ताल लंबे और अत्यन्त दृढ़ धनुष को वैसे ही तोड़ डाला, जैसे कोई हाथी किसी छड़ी को तोड़ डाले। हमारे प्यारे श्रीकृष्ण ने एक हाथ से सात दिनों तक गिरिराज को उठाये रखा था।

प्रलम्बो धेनुकोऽरिष्टस्- तृणावर्तो बकादयः ।

दैत्याः(स्) सुरासुरजितो, हता येनेह लीलया ॥ 26॥

धेनुकोऽ + रिष्टस् , सुरा + सुरजितो

यहीं सबके देखते-देखते खेल-खेल में उन्होंने प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त और बक आदि उन बड़े बड़े दैत्यों को मार डाला, जिन्होंने समस्त देवता और असुरों पर विजय प्राप्त कर ली थी।

श्रीशुक उवाच

इति सं(म्)स्मृत्य सं(म्)स्मृत्य, नन्दः(ख्) कृष्णानुरक्तधीः ।

अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं(म्), प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ 27॥ Viv vahla

कृष्णा + नुरक्तधीः, अत्युत्कण्ठोऽ + भवत्तूष्णीं(म्), प्रेमप्रसर + विह्वलः

श्रीशुकदेवजी कहते हैं-परीक्षित् । नन्दबाबा का हृदय यों ही भगवान् श्रीकृष्ण के अनुराग-रंग में रंगा हुआ था। जब इस प्रकार वे उनकी लीलाओं का एक-एक करके स्मरण करने लगे, तब तो उनमें प्रेम की बाढ़ ही आ गयी, वे विह्वल हो गये और मिलने की अत्यन्त उत्कण्ठा होने के कारण उनका गला रुँध गया। वे चुप हो गये।

यशोदा वर्ण्यमानानि, पुत्रस्य चरितानि च ।

शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत्, स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ 28॥

Type text here

वर्ण्य + मानानि, शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत्

यशोदारानी भी वहीं बैठकर नन्दबाबा की बातें सुन रही थीं, श्रीकृष्ण की एक-एक लीला सुनकर उनके नेत्रों से आँसू बहते जाते थे और पुत्रस्नेह की बाढ़ से उनके स्तनों से की धारा बहती जा रही थी।

तयोरित्थं(म्) भगवति, कृष्णे नन्दयशोदयोः ।

वीक्ष्यानुरागं(म्) परमं(न्), नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥ 29॥

नन्दमाहोद् + धवो, वीक्ष्या+नुरागं(म्)

उद्धवजी नन्दबाबा और यशदारानी के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति कैसा अगाध अनुराग है यह देखकर आनन्दमय हो गये और उनसे कहने लगे।

उद्धव उवाच

युवां(म्) श्लाघ्यतमौ नूनं(न्), देहिनामिह मानद ।

नारायणेऽखिलगुरौ, यत् कृता मतिरीदृशी ॥ 30॥

नारायणेऽ + खिलगुरौ, मतिरी + दृशी

उद्धवजीने कहा- हे मानद ! इसमें सन्देह नहीं कि आप दोनों समस्त शरीरधारियों में अत्यन्त भाग्यवान हैं, सराहना करनेयोग्य हैं। क्योंकि जो सारे चराचर जगत के बनानेवाले और उसे ज्ञान देने वाले नारायण है, उनके प्रति आपके हृदय में ऐसा वात्सल्यस्नेह पुत्रभाव है।

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी

रामो मुकुन्दः(फ्) पुरुषः(फ्) प्रधानम् ।

अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य

ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ 31॥

बलराम और श्रीकृष्ण पुराणपुरुष हैं; वे सारे संसार के उपादान कारण और निमित्त कारण भी हैं। भगवान् श्रीकृष्ण पुरुष हैं तो बलरामजी प्रधान प्रकृति। ये ही दोनों समस्त शरीरों में प्रविष्ट होकर उन्हें जीवनदान देते हैं और उनमें उनसे अत्यन्त विलक्षण जो ज्ञानस्वरूप जीव है, उसका नियमन करते हैं।

यस्मिञ्जनः(फ्) प्राणवियोगकाले

क्षणं(म्) समावेश्य मनो विशुद्धम् ।

निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति

परां(ङ्) गतिं(म्) ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ 32॥

प्राणवियो+गकाले, कर्मा + शयमाशु , ब्रह्ममयोऽ + र्कवर्णः

जो जीव मृत्यु के समय अपने शुद्ध मन को एक क्षण के लिये भी उनमें लगा देता है, वह समस्त कर्म-वासनाओं को धो बहाता है और शीघ्र ही सूर्यक समान तेजस्वी तथा ब्रह्ममय होकर परमगति को प्राप्त होता है।

तस्मिन् भवन्तावखिलात्महेतौ

नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ।

भावं(वँ) विधत्तां(न्) नितरां(म्) महात्मन्

किं(वँ) वावशिष्टं(यँ) युवयोः(स्) सुकृत्यम् ॥ 33॥

भवन्ता+ वखिलात् + महेतौ, कारण + मर्त्यमूर्तौ

वे भगवान ही, जो सबके आत्मा और परम कारण हैं, भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने और पृथ्वी का भार उतारने के लिये मनुष्य का-सा शरीर ग्रहण करके प्रकट हुए हैं। उनके प्रति आप दोनों का ऐसा सुदृढ़ वात्सल्यभाव है; फिर महात्माओ! आप दोनों के लिये अब कौन-सा शुभ कर्म करना शेष रह जाता है।

आगमिष्यत्यदीर्घेण, कालेन व्रजमच्युतः ।

प्रियं(वँ) विधास्यते पित्रोर् - भगवान् सात्वतां(म्) पतिः ॥ 34॥

आगमिष्य+त्यदीर्घेण, व्रज+मच्युतः

भक्तवत्सल यदुवंशशिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण थोड़े ही दिनों में व्रज में आयेंगे और आप दोनों को अपने माँ-बाप को आनन्दित करेंगे।

हत्वा कं(म्)सं(म्) रङ्गमध्ये, प्रतीपं(म्) सर्वसात्वताम् ।

यदाह वः(स्) समागत्य, कृष्णः(स्) सत्यं(ङ्) करोति तत् ॥ 35॥

सर्वसा+त्वताम्

जिस समय उन्होंने समस्त यदुवंशियों के द्रोही कंस को रंगभूमि में मार डाला और आपके पास आकर कहा कि 'मैं व्रज में आऊंगा', उस कथनको वे सत्य करेंगे।

मा खिद्यतं(म्) महाभागौ, द्रक्ष्यथः(ख्) कृष्णमन्तिके ।

अन्तर्हृदि स भूताना- मास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ 36॥

कृष्ण+मन्तिके, ज्यो+ तिरिवै +धसि

नन्दबाबा और माता यशोदाजी! आप दोनों परम भाग्यशाली हैं। खेद न करें। आप श्रीकृष्ण को अपने पास ही देखेंगे; क्योंकि जैसे काष्ठ में अग्नि सदा ही व्यापक रूप से रहती है, वैसे ही वे समस्त प्राणियों के हृदय में सर्वदा विराजमान रहते हैं।

न ह्यस्यास्ति प्रियः(ख्) कश्चिन्- नाप्रियो वास्त्यमानिनः ।

नोत्तमो नाधमो नापि, समानस्यासमोऽपि वा ॥ 37॥

ह्यस्या +स्ति, वास्त्यमा+निनः, समानस्या+समोऽपि

एक शरीर के प्रति अभिमान न होने के कारण न तो कोई उनका प्रिय है और न तो अप्रिय। वे सबमें और सबके प्रति समान हैं; इसलिये उनकी दृष्टि में न तो कोई उत्तम है और न तो अधम । यहाँ तक कि विषमता का भाव रखनेवाला भी उनके लिये विषम नहीं है।

न माता न पिता तस्य, न भार्या न सुतादयः ।

नात्मीयो न परश्चापि, न देहो जन्म एव च ॥ 38॥

परश् + चापि

न तो उनकी कोई माता है और न पिता।न पत्नी है और न तो पुत्र आदि न अपना है और न तो पराया। न देह है और न तो जन्म ही।

न चास्य कर्म वा लोके, सदसन्मिश्रयोनिषु ।

क्रीडार्थः(स्) सोऽपि साधूनां(म्), परित्राणाय कल्पते ॥ 39॥

सदसन्मिश्रयो+निषु

इस लोक में उनका कोई कर्म नहीं है फिर भी वे साधुओं के परित्राण के लिये, लीला करने के लिये देवादि सात्त्विक, मत्स्यादि तामस एवं मनुष्य आदि मिश्र योनियों में शरीर धारण करते हैं।

सत्त्वं(म्) रजस्तम इति, भजते निर्गुणो गुणान् ।

क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः(स्), सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ 40॥

क्रीडन् + नतीतोऽत्र, सृजत् + यवति

भगवान अजन्मा हैं। उनमें प्राकृत सत्त्व, रज आदि में से एक भी गुण नहीं है। इस प्रकार इन गुणों से अतीत होने पर भी लीला के लिये खेल-खेल में वे सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों को स्वीकार कर लेते हैं और उनके द्वारा जगत की रचना, पालन और संहार करते हैं।

यथा भ्रमरिकादृष्ट्या, भ्राम्यतीव महीयते ।

चित्ते कर्तरि तत्रात्मा, कर्तेवाहन्धिया स्मृतः ॥ 41॥

भ्रमरिका + दृष्ट्या, कर्तेवा + हन्धिया

जब बच्चे घुमरीपरेता खेलने लगते हैं या मनुष्य वेग से चक्कर लगाने लगते हैं, तब उन्हें सारी पृथ्वी घूमती हुई जान पड़ती है। वैसे ही वास्तव में सब कुछ करनेवाला चित्त ही है; परन्तु उस चित्त में अहंबुद्धि हो जाने के कारण, भ्रमवश उसे आत्मा-अपना 'मैं' समझ लेने के कारण, जीव अपने को कर्ता समझने लगता है।

युवयोरेव नैवाय- मात्मजो भगवान् हरिः ।

सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा, पिता माता स ईश्वरः ॥ 42॥

सर्वेषा+मात्मजो

भगवान श्रीकृष्ण केवल आप दोनों के ही पुत्र नहीं हैं, वे समस्त प्राणियों के आत्मा, पुत्र, पिता-माता और स्वामी भी है।

दृष्टं(म्) श्रुतं(म्) भूतभवद् भविष्यत्,

स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं(ञ्) च ।

विनाच्युताद् वस्तु तरां(न्) न वाच्यं(म्)

स एव सर्वं(म्) परमार्थभूतः ॥ 43॥

स्थास्नुश् + चरिष्णुर् + महदल्पकं(ञ्)

बाबा ! जो कुछ देखा या सुना जाता है-वह चाहे भूत से सम्बन्ध रखता हो, वर्तमान से अथवा भविष्य से; स्थावर हो या जंगम हो, महान हो अथवा अल्प हो-ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है जो भगवान श्रीकृष्ण से पृथक हो बाबा! श्रीकृष्ण के अतिरिक्त ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे वस्तु कह सकें। वास्तव में सब वे ही हैं, वे ही परमार्थ सत्य हैं।

एवं(न्) निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता

नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ।

गोप्यः(स्) समुत्थाय निरूप्य दीपान्-

वास्तून् समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थन् ॥ 44॥

ब्रुवतोर् +व्यतीता, कृष्णा+नुचरस्य, दधीन्+यमन्थन्

परीक्षित! भगवान श्रीकृष्ण के सखा उद्धव और नन्दबाबा इसी प्रकार आपस में बात करते रहे और वह रात बीत गयी। कुछ रात शेष रहने पर गोपियाँ उठीं, दीपक जलाकर उन्होंने घर की देहलियों पर वास्तु देव का पूजन किया,अपने घरों को झाड़-बुहार कर साफ किया और फिर दही मथ ने लगीं

ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू

रज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः ।

चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डल-

त्विषत्कपोलारुणकुं(ङ्)कुमाननाः ॥ 45॥

दीप+दीप्तैर्+मणिभिर् +विरेजू , रज्जूर्+विकर्षद्+भुजकङ्कण+स्रजः

चलन्+नितम्ब+स्तनहा+रकुण्डल, त्विषत् + कपोला+रुणकुं(ङ्)कुमा+ननाः

गोपियों की कलाइयों में कंगन शोभायमान हो रहे थे, रस्सी खींचते समय वे बहुत भली मालूम हो रही थीं। उनके नितम्ब, स्तन और गले के हार हिल रहे थे। कानों के कुण्डल हिल-हिलकर उनके कुंकुम-मण्डित कपोलों की लालिमा बढ़ा रहे थे। उनके आभूषणों की मणियाँ दीपक की ज्योति से और भी जगमगा रही थीं और इस प्रकार वे अत्यन्त शोभा से सम्पन्न होकर दही मथ रही थीं!

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं(वँ)

व्रजाङ्गनानां(न्) दिवमस्पृशद् ध्वनिः ।

दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो

निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥ 46॥

उद्गायतीना+मरविन्दलोचनं(वँ), दिवमस् + पृशद् , निर्मन् +थनशब्द+मिश्रितो, दिशा+ममङ्गलम्

उस समय गोपियाँ-कमलनयन भगवान श्रीकृष्ण के मंगलमय चरित्रों का गान कर रही थीं। उनका वह संगीत दही मथने की ध्वनि से मिलकर और भी अद्भुत हो गया तथा स्वर्गलोक तक जा पहुँचा, जिसकी स्वर लहरी सब ओर फैलकर दिशाओं का अमंगल मिटा देती है।

भगवत्युदिते सूर्ये, नन्दद्वारि व्रजौकसः ।

दृष्ट्वा रथं(म्) शातकौम्भं(ङ्), कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥ 47॥

भगवत् +युदिते, कस्या+यमिति

जब भगवान भुवनभास्कर का उदय हुआ, तब व्रजांगनाओं ने देखा कि नन्दबाबा के दरवाजे पर एक सोने का रथ खड़ा है। वे एक-दूसरे से पूछने लगीं 'यह किसका रथ है ?

अक्रूर आगतः(ख्) किं(वँ) वा, यः(ख्) कं(म्)सस्यार्थसाधकः।

येन नीतो मधुपुरीं(ङ्), कृष्णः(ख्) कमललोचनः ॥ 48॥

कं(म्)सस्या+र्थसाधकः, कमललो+चनः

किसी गोपी ने कहा-'कंस का प्रयोजन सिद्ध करने वाला अक्रूर ही तो कहीं फिर नहीं आ गया है? जो कमलनयन प्यारे श्यामसुन्दर को यहाँ से मथुरा ले गया था!

किं(म्) साधयिष्यत्यस्माभिर्-भर्तुः(फ्) प्रेतस्य निष्कृतिम् ।

इति स्त्रीणां(वँ) वदन्तीना-मुद्धवोऽगात् कृताह्निकः ॥ 49॥

साधयिष्यत् + यस्माभिर् , मुद्धवोऽ+गात्, कृताह् + निकः

किसी दूसरी गोपी ने कहा-'क्या अब वह हमें ले जाकर अपने मरे हुए स्वामी कंस का पिण्डदान करेगा? अब यहाँ उसके आने का और क्या प्रयोजन हो सकता है? व्रजवासिनी स्त्रियाँ इसी प्रकार आपसमें बातचीत कर रही थीं कि उसी समय नित्यकर्म से निवृत्त होकर उद्धवजी आ पहुँचे।

॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दशोकापनयनं(न्) नाम षट्चत्वारिं(म्)शोऽध्यायः॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥